परस्पेक्टिव को तो हम हमेशा ही देखते हैं

दिलीप चिंचालकर

इस बार हम बात करते हैं "परस्पेक्टिव" की। दिखने और बोलने में यह शब्द थोड़ा कठिन ज़रूर है। थोड़ा तकनीकी मामला है न शायद इसलिए ही। असल में इसे हम-तुम हमेशा देखते हैं पर जानने में चूक हो जाती है। तो समझ लो कि आगे-पीछे रखी हुई वस्तुओं को उसी तरह (क्रम में) देखना-दिखाना ही परस्पेक्टिव है।

इसे एक उदाहरण से समझते हैं। जैसे, हमारे शरीर के अन्दर घटने वाली रासायनिक क्रियाओं की हमें ठीक-ठीक जानकारी न भी हो तो भी खाने और उससे मिलने वाली शक्ति का सम्बन्ध हमें पता होता ही है। उसी तरह यह कठिन शब्द न भी मालूम हो तो भी हमारी दो आँखें हर दृश्य का परस्पेक्टिव ही देख रही होती है।

तुम्हारे सामने एक-से कद के दो बच्चे खड़े हैं। यदि वे आगे-पीछे हो जाते हैं तो पीछे खड़े बच्चे का कद कुछ कम दिखाई देने लगता है। आगे वाला बच्चा जगह बदलकर पीछे वाले के पीछे चला जाए तो वह उससे भी छोटा दिखाई देने लगेगा। परस्पेक्टिव का अर्थ नहीं पता होने के बावजूद चित्र बनाते समय बच्चों को इसकी समझ ज़रूर रहती है। तभी तो एक पहाड़ जो बच्चे की तुलना में काफी ऊँचा होता है, उसे हर नन्हा चित्रकार चित्र में बच्चे के पीछे छोटा ही बनाता है। इससे दूरी का भी पता चल जाता है। पृथ्वी से बड़ा सूरज यहाँ पहाड़ से भी छोटा हो जाता है क्योंकि वह बहुत-बहुत दूर है। पक्षी सूरज से थोड़े ही छोटे बनते हैं क्योंकि वे पास में हैं। पास-दूर और छोटे-बड़े का गणित हमारी आँखें अपने आप कर लेती हैं।

इस गणित का और अच्छा अभ्यास करने के लिए किसी गली के एक छोर से दूसरे तक का स्केच करना सबसे अच्छा तरीका है। बाहर न जाना चाहो तो एक कोने में बैठकर अपने कमरे या घर का ही चित्र बनाओ। इस अभ्यास के दो फायदे हैं – पहला यह कि वस्तुओं का आकार, बीच की दूरी और एक-दूसरे से कोण का सम्बन्ध दिमाग में पक्का होने लगता है। दूसरा, परस्पेक्टिव का नियम अपने आप समझ में आ जाता है। नियम यह कि कागज़ (या फ्रेम) की बाजुओं से कागज़ के मध्य बिन्दु को जोड़ने वाली सीधी रेखाओं के सहारे (चित्र में देखो) वस्तुएँ छोटी होती चली जाती हैं। जब वस्तुएँ इन रेखाओं को छोड़ देती हैं तो परस्पेक्टिव बिगड़ जाता है।

चित्रः विकास गजेन्द्र वर्मा, मुम्बई

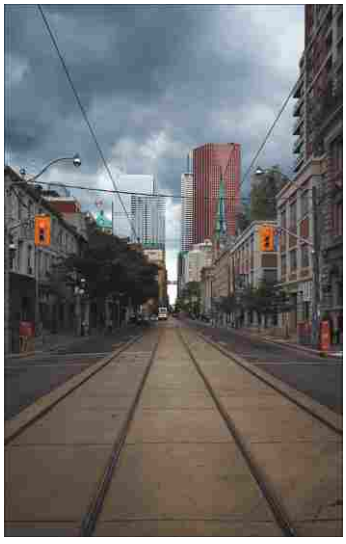

बाजुओं से कागज़ के मध्य बिन्दु को जोड़ने वाली सीधी रेखाओं के सहारे वस्तुएँ छोटी होती चली जाती हैं